ॐ

"आगम अष्टोत्तरी भाषांतर"



प्रकाशक

श्री हिन्दी जैन कार्यालयके तरफसे

कस्तूरचन्द जवरचन्द गादिया.

बम्बई.



अहमदाबाद.

श्री सत्यविजय प्रेसमें शा. सांकळचंद हरीलालने मुद्रित किया.



स. १९६८ प्रत. १००० इ. स. १९१२



किंमत. ०-४-०

समर्पण पत्रिका.

श्रीमान् शेठजी साहब.

श्रीयुत् चंदनमलजी नागोरी

स्थल–छोटी सादडी (मेवाड.)

महाशयजी !

आप जैसे सुज्ञ हैं, वैसेही अपने धर्म व नीति उपर अत्यंत प्रेम रखते हैं। ऐसे पुस्तक प्रगट करनेमें आपका उत्साह, जातीके तरफ हमदर्दी, उत्तम साहित्य प्रेमी, आदिक अनेक गुणोंसे आकर्षित होकर ये आगम अष्टोत्तरीका हिन्दी भाषांतर सादर समर्पण करता हूं, सो स्वीकृत कीजियेगाजी।

इत्यलम्।

हिन्दी जैन कार्यालय
ता. १–१–१९१२
बम्बई नं. २

लि. कृपाकांक्षी.
कस्तूरचन्द जवरचन्द गादिया

Seth Chandanmalji Nagori, Esq.



श्रीयुत् शेठ साहेब चंदनमलजी नागोरी.

मु. छोटीसादडी (मेवाड.)

भूमिका.

वर्तमान समयमें ग्रंथोंका हिन्दी भाषामें प्रकाशित होना अ-त्यंतावश्यकीयं है। धार्मिक, सामाजिक, नैतिक और औद्योगिक विषयोंपर एकही नहीं परन्तु अनेक पुस्तकोंका प्रकाशित होना एक उन्नतिका शुभ चिन्ह है। जिन२ बातोंसे ज्ञान प्राप्त होता है, उसमें उत्तम२ पुस्तकोंका वांचनभी एक अच्छा दरजा रखता है।

इस पुस्तकमें श्रीमद् अभयदेव सूरिजीने अत्युत्तम उपदेश दिया है, एक कवि और गौ आदि पशुओंमें धर्मी और अधर्मीके विषयमें जो संवाद हुआ है, वह वास्तवमें पढते २ उर उदधिमें आनंद–वैराग्यके तरंग उठते हैं। जीव यही चाहता है कि, पुनः पुनः इस पुस्तकका पठन किया करें। एक वक्त किताब हाथमें लेवें तो पुनः पूरी बांचे विना छोडनेको दिल नहीं चाहता। इस पुस्तकके पठन पाठनसे वैराग्य दशामें थोडा वहुत प्रवेश होता है। अनुक्रमसे बढते बढते यावत् अविच्छिन्न ऐसा जो मोक्ष सुखकी प्राप्ति करनेमें मनुष्य कटिबद्ध होता है। इस छोटीसी पुस्तकमें धर्मसे सुख और पापसे दुःख प्राप्त होता है, धर्मसे कौन सुखी और अधर्मसे कौन दुःखी हुआ यहभी साथ दृष्टांतके वता दिया गया है। हम यहां तक कहनेकी हिंमत करते हैं कि, यह छोटीसी पुस्तककी एक एक प्रति हरेक जैन धर्मावलंवीके घरमें रहना जरूरी है, इससे अवश्य कर कुछ न कुछ लाभ होगा।

ये पुस्तककी मूलमें तो श्रीमद् अभयदेव सूरिजीने संस्कृत भाषामें रचना कीथी । वि॰ सं॰ १९५४ में अहमदावादमें गुर्जर भाषामें इसका अनुवाद छपाथा, उसका हिन्दी अनुवाद महाशय जमनालालजी कोठारी वम्बईने करके मुझे छपवानेदी । इस लिये मैं आपका उपकार मानता हूं, और धन्यवाद देता हूं ।

इस पुस्तकमें प्रुफ देखनेमें दृष्टि दोषसे जो कुछ भूल रह गई हो तो सुज्ञ जन क्षमा करें । हरेक मनुष्य भूलके पात्र है । इत्यलम्

"प्रकाशक."



॥ श्री वीतरागायनमः ॥

॥आगम अष्टोत्तरी भाषान्तर॥

॥ अथ श्रीमद् अभयदेवसूरिजीकृत आगम अष्टोत्तरी भाषान्तर लिख्यते ॥

॥ श्लोक ॥

प्रणम्य श्रीमहावीरं, स्वस्तिश्री वरदायकं ॥
आगम अष्टोत्तरीकां, कुर्वे बालावबोधिनीं ॥१॥

सु विशाल लोयणदलं, विशुद्धदंतं सुकेसरालीढं ॥
अहरुठपत्त छबियंभ, वियभमरालि सु जिग्धंतं ॥१॥

अर्थ—प्रथम दो गाथा करके श्री अभयदेवाचार्य शिष्ट जनप्रतीत्ति रखनेके वास्ते मंगलाचरण पूर्वक इष्टदेव श्री वीर-प्रभु प्रत्ये नमस्कार करते हैं। श्री वर्द्धमान स्वामीका मुखकमल है, वो मेरेको वांछित अर्थ देओ। वो मुखकमल कैसा है कि सुवि-शाल, विस्तीर्ण और जैसे कमल पांखडियो करके शोभा देता है इसी तरह वीर भगवंतका मुखकमल शोभा देता है। फिर कैसा है कि जिस तरह कमलके कर्णिका शोभे हैं, तिसी तरह वीरप्रभु का मुखारविन्द शोभा देता है। फिर कैसा है कि जिस तरह क-

मलका पत्र रक्तकान्ति करके शोभा देता है तिसी तरह वीर परमात्माके ओष्ठ शोभा देते हैं। फिर मुखकमल कैसा है कि जिस तरह भ्रमर कमलपर गुंजारव शब्द करते सुगंधि लेते हैं तिसी तरह वीर भगवन्तके मुखकमलसे निकली हुई सुगन्धि रूप वाणीको भव्य जीवरूप भ्रमर हर्षवंत होते हुवे ग्रहण करते हैं ॥१॥

जस परिमलपल्लवियं सुवोहियं नाण भाणु किरणेहिं॥
महदिसउवं छियंत्थ मुहपउमं वद्ध माणस्स ॥ २ ॥

अर्थ—फिर मुखकमल कैसा हे कि जिस तरह कमल नवीन पत्रकी सुंगध करके शोभायमान है तिस तरह वीर परमात्माका मुखकमल यशरूप पत्र करके शोभायमान है। फिर मुख कमल कैसा हे कि कमल जैसे सूर्यकी किरणों करके शोभायमान है, तिसी तरह महावीर स्वामीका मुखरूप कमल ज्ञान रूप वाणी करके शोभा देता है; वो मुखकमल हमको सुख देनेवाला होवो ॥ २ ॥

सिरिवद्धमाणसामी समत्त गणि पिडग धारिणाज्ञेय॥
इकारस्सगण धारा नाम गहणेण मंसामि ॥३॥

अर्थ—ज्ञानादि लक्ष्मीवंत श्री वर्द्धमान स्वामीको और समस्त इंद्रभूति, अग्निभूति आदि गणधरोंको नमस्कार करता हूँ, यह नमस्कार सर्व पदोंमें जोडना ॥ ३ ॥

अब भावतीर्थकी आदिभूत परम्परा लिखते हैं ॥

सिरिवद्ध माणपट्टे गोयम सामीय पढम पट्टधरो॥
तप्पट्टे सोहम्मो परंपरा तित्थ भाविल्लो ॥ ४ ॥

अर्थ—ज्ञानादि लक्ष्मीवंत श्री वर्द्धमान स्वामीके पाट श्री गौतम स्वामी प्रथम गणधर जाणना, और श्री गौतम स्वामीके पाट श्री सुधर्मा स्वामी जाणना। वो सुधर्मा स्वामी भावपरम्परा करके तीर्थके आदिभूत होते भये ॥ ४ ॥

अब भाव परम्परा लिखते हैं॥

अज्जत्ता जे समणा ते सव्वे अज्ज सुहम सीसाओ॥
भाव परंपर तित्थं वट्टइ सव्वंपि तम्हाओ ॥ ५ ॥

अर्थ—आज अर्थात् वर्तमान कालसे लेकर जो साधु प्रवर्तते हैं, सो सर्व आर्य सुधर्मा स्वामीके शिष्य प्रतिशिष्यरूप हैं, याने शिष्यके शिष्य भाव परंपरातीर्थ हैं। सो प्रवर्तते हैं वो सबही श्री सुधर्मा स्वामीसे अर्थात् पंचांगी प्रमाणे शुद्ध समाचारीके प्रवर्तानेवाले, निष्कपटी, निरअहंकारी मूल उत्तर गुणके खप करनवाले वे सब जो अभी वर्तते हैं, वे सर्व सुधर्मा स्वामीके गच्छके समझना।ऐसा दशाश्रुत स्कंधके आठवें अध्ययनमें कहा है॥५॥

अब भाव परम्पराके लक्षण कहते हैं॥

सुतत्थ करणओ खलु परंपरा भावओ विआणिज्जा॥
सिरिजंबुसामी सिस्सा आगम गंथोओ गहिअव्वा६

अर्थ—जंबु स्वामीके शिष्य दूसरे प्रतिशिष्य सिद्धान्तसे ग्रहण करने याने सूत्र सो जिन गणधर तथा चौदे पूर्वधर, दश-पूर्वधर, प्रत्येक बुद्ध प्रमुख चार बुद्धिवंतोंके रचे हुए और अर्थ सो निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति प्रमुख पुर्वाचार्योंकी करी हुई पंचांगी प्रमाणे शुद्ध अर्थके कहनेवाले होय तथा उसी प्रमाणे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, निश्चय, व्यवहार, उत्सर्ग, अपवाद, कारण कार्य प्रमुख समझकर खुद प्रवर्ते और दुसरोंको प्रवर्तानेवाले होय ऐसे महात्मा श्री जंबु स्वामीके शिष्य प्रतिशिष्य यावत् पंचम आरेके अंत तक भावतीर्थवंत जानना ॥ ६ ॥

अब जिसने आगमका बहु मान किया उसने सर्वका बहु मान किया ऐसी आगम साख सहित अगली गाथामें दिखाते हैं ॥

॥ यतः आगमे ॥

आगमं आयरं तेण अत्तणो हि अकंखिणा ॥
तित्थनाहो गुरु धम्मो सव्वेते बहु मन्निआ ॥७॥

अर्थ—जो पुरुष अभिनिवेशक मिथ्यात्वको त्याग करके जिन आगम प्रमाणे आचरण आचरे वो पुरुष सर्व तीर्थंकर पूर्वाचार्य और धर्मका बहु मान करनेवाला जानना। जो पुरुष सिद्धान्तको नहीं माने और अपने गच्छ ममत्व कदाग्रहसे ग्रन्थ और अपने गच्छकी परंपराका बहुमान करके जो शुद्ध सिद्धान्त पंचांगी मुजब वर्तनेवाले सत्पुरुष हैं उनका अपमान करता है, वे पुरुष तीर्थंकर तथा गुरू सो पूर्वाचार्य

और धर्म इन तीनोंका अपमान—आशातनाका करनेवाला जानना। इसके ऊपर सिद्धान्तयुक्त दृष्टान्त सहित आचार्य महाराज हितशिक्षा देते हैं ॥ ७ ॥

रन्नोतण घरकरणं सचित्तकम्मं च गामसमस्स ।
दुहंपिदंडकरणं विवरीयतेण उवणयओ ॥ ८ ॥

अर्थ—अब द्रष्टान्त कहते हैं ॥ जैसे कोइ एक राजा अपनी राजधानीमें सैर करनेके वास्ते जानेको तैयार हुवा, और राजाने हुक्म दीयाकि अमुक गाममें चल कर ठहरेंगे सो मकानका बंदोवस्त करावो । जब राजाके नोकरोंने उस गामके सव लोगोंको हुक्म सुना दिया । जब उस गामके अधिपतिने लोगोंको बुला कर कहा कि मेरे रहनेके वास्तेभी एक घर चाहिये सो कराय दो । जब गामके लोगोंने विचार किया कि राजा तो आकर एक रोज रह कर चला जावेगा । इस लिये अधिक रूपे खर्च करके मकान वनानेकी क्या जरूरत है । एक घासका झूँपडा कराय कर कांटोंकी वाडका मोटा वाडा घेरायलो सो राजा उसमे ठहर जायगा, एक रोज रह कर चला जायगा। अपने गामके ठाकुरसे तो हमेशां काम पडता है, इस वास्ते यह राजी रहेगा तो अच्छा है । इस वास्ते वहोत रुपे खर्च करके अनेक प्रकारके चित्राम सहित दो मंजिलका मकान सुंदर मनोहर करवावो, इससे ठाकुर अपने पर खुश रहेंगे और अपनेको तकलीफ नहीं देंगे । ऐसा विचार करके गामके लोगोंने राजाके वास्ते तो

घासका झूंपडा बनाया और ठाकुरकें वास्ते अच्छा महल तैयार करवा दिया। इससे ठाकुर लोगों पर खुश हुवा। इतनेमें राजाभी उस गाममें आन पहुंचा और राजाकी नजर उस ठाकुरके मकान पर पडी। विचारा कि इस गामके लोगोंने मेरे ठहरनेके वास्ते यह मकान बनाया है। ऐसा विचारके राजा उस मकानमें जाने लगा तब गामके लोग कहने लगे कि हे राजन्! आपका यह मकान नहीं है। तब राजाने पूछाकि तो फिर किसका है? लोग कहने लगे कि यह तो गामके ठाकुरका मकान है और आपके रहने वास्ते तो यह घासका मकान है। ऐसे बचन लोगोंके मुखसे सुन कर और अपने वास्ते घासका मकान देख कर, क्रोधायमान हो कर गामके ठाकुरकुं जो गाम जागीरमें दीया था सो छीन लीया और गामके लोगोंको मोटा दंड दीया॥ यह तो द्रष्टान्त हुवा अब इसका द्राष्टान्त दिखाते हैं, कि गामके ठाकुरकी जगह तो आचार्य और राजाकी जगह श्री तीर्थंकर देव नगर लोगोंके ठिकाने साधु प्रमुख। जिस तरह राजाकी आज्ञा खंडन करी तो गामका ठाकुर व लोगोंको दंड मिला, इसी तरह तीर्थंकरोंकी आज्ञा खंडन करे तो आचार्य व साधु दोनों दंड पावे॥ ८॥

अब जो मुनि नाम धराय कर आगम भ्रष्ट विपरीत आचरणोंमें वर्ते याने विचरे वे पुरुष एक कौडी मात्र मूल्य नहीं पासक्ता। सो दिखाते हैं॥

आगमभट्ठो मुणि बहभूमीभट्ठो गयंदवरराया ।
धणभट्ठो ववहारी न लहंति कवडियामुल्लं ॥९॥

अर्थ—आगमभ्रष्ट साधु, भूमीभ्रष्ट राजा, धनभ्रष्ट व्यवहारीया अर्थात् व्यापार करने वाला यह तीनों एक कौडी मात्र मूल्यको नहीं पाते हैं । तात्पर्य यह है कि जो सिद्धान्तके कथनसे विपरीत तप कष्ट क्रिया करे तो भी कुछ फलकी प्राप्ती नहीं होय ॥ ९ ॥

अब द्रव्य परंपराकी ओलखान (पहचान) कहते हैं ॥

लोयाणं एसठिई अज्जय पज्जय गयाय मज्जाया ॥
दव्वपरंपरटवणा कुलकमं नेव मिल्हिस्सं ॥ १० ॥

अर्थ—लोगकी स्थिति, कुल परंपरा प्रमुख पाय कर मर्यादासो द्रव्य परंपरा स्थापना करना कुल परंपरासे जो चली आती है उसको नहीं छोडना । यह संसार का व्यामोह समझना अर्थात् अपनी कुलक्रम मर्यादा मुजबही क्रिया अनुष्ठान करता रहे, परन्तु शुद्ध अशुद्धका विवेचन (विचार)न करे सो लोकस्थिति परंपरा समझना ॥ १० ॥

अब जो कुल परंपराकी स्थिति नहीं छोडे सो दिखाते हैं ॥

मूढाणं एसाठिइ चुक्कंति जिणुत्तवयणमग्गाओ ॥
हारंति बोहिलाभं आयहियं नेव जाणंति ॥ ११ ॥

अर्थ—मूर्खोंका यह पूर्वोक्त स्थिति कुलक्रमागत मर्यादा आप्त बचन मार्गसे चूकते हैं। यानी जिन केवली भगवंतके वचन मार्गसे हारते हैं, क्या हारते हैं कि बोधिबीजरूप सम्यक्त्वको। वे पुरुष आत्माके हितको नहीं समजते हैं तात्पर्य खुद जानते हुवे भी शुद्ध अशुद्ध विवेचन किये बगेर कुल परंपरा पाले परन्तु छोडे नहीं। लोह बानियेकी तरह उस पुरुषको महा मूर्ख समजना। ऐसे पुरुषकों बोधिबीज प्राप्त होना महा दुर्लभ है। कदाचित् पेश्तर पाया होय तोभी हार जाय। अब द्रव्य और भाव यह दोनों परंपरा दिखाते हैं. ॥ ११ ॥

दव्व परंपरवंसो संजम चुक्काणं सव्व जीवाणं ॥
भाव परंपर धम्मोजिणंद आणाओ सुपसिद्धो॥१२॥

भावार्थ—जो अपना कुलक्रम तथा गच्छ ममत्व कदाग्रहके वश प्रवर्ते उसको द्रव्य परंपरा वश कहना। उसमें बसने वाले जीवको संसारकी वृद्धि होय; परन्तु आत्मसिद्धि नहीं होय; और जो श्री वीतरागकी आज्ञासंयुक्त तप, जप, संजम, अनुष्ठान, क्रिया सामाचारी करनी वो भावपरंपरा समजनी। इसीसे आत्मासिद्धि होती है, परन्तु वीतरागकी आज्ञा रहित द्रव्य परंपरासे तप जप संजम क्रिया सर्व छार (राख) पर नीपनेके समान समजना अर्थात् व्यर्थ समजना। अब द्रव्य परम्पराकी द्रष्टान्त द्वारा पहचान कराते हैं ॥ १२ ॥

दव्व परम्परपद्यो अणेणं दुग्गोसिहेण रायेणं ॥
कोसंबीईमिगासु अवयण छलणा ईकारविओ॥१३॥

भावार्थ—कोसंबी नगरीमें मृगावती राणीने सूत वचन छल करके चंद्रप्रद्योतन राजाके पास जो गढ कोट सज्ज करनेको इंटें मंगवाई सो यह द्रव्य परम्परा समजनी। अब भाव परम्परा-की स्थिति और द्रव्य परम्पराकी उत्पत्ति बतलाते हैं। ॥१३॥

देवढ्ढीखमासमणजा परंपरा भाव ओविआणेमि ॥
सिठिलायारेठवियादव्वेणं परंपरा बहुआ ॥ १४ ॥

भावार्थ—सुधर्मा स्वामीसे लेकर देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण तक प्रायः करके भावपरम्परा चली। जिसके बाद शिथलाचार्योंके प्रभावसे प्रायः द्रव्य परम्परा हुई और अल्पभाव परम्परा रही। अब द्रव्यपरम्पराका द्रष्टान्त सहित असारपना दिखलाते हैं॥१४॥

वेसकरंडतुलेहिं सोवागकरंडसमाणेहिं ॥
दव्वपरंपरगहिआ नियानिय गच्छाणुराएणं॥१५॥

भावार्थ—जैसे वेश्याओंके आभूषण भीतरसें तो कांसी पीतल तांबा प्रमुखके खोटे होते हैं, परन्तु बाहरसे सुन्ना चांदी मोती सरीखे महा तेजस्वी दिखते हैं। इसी तरह पासत्था और निन्हव लोग बाहिरसे क्रियाका आडम्बर करके अच्छे दिखते हैं. परन्तु अन्तरंग में गच्छममत्व करके व अपनी ममत्व कला करके

असार होते हैं । फिर दूसरा द्रष्टान्त देते हैंकि जैसे चांडालके करंडीयेकी तरह भीतर और बाहिरसे असार होय इसी तरह कुलिंगी भेषधारी बाहिरसे क्रिया करके रहित और अंतरंग में रागद्वेष करके अपने गच्छममत्व कदाग्रहको स्थापन करते हुवे मुनि (साधु) पना अपनेमें धराते हुवे जिनाज्ञा विराधते हैं। वे लोग बाहिर वे भीतर दोनो तरहसे असार जानना ॥ १५ ॥

अब जो द्रव्य परम्परामें वर्तते हैं पासत्थादिक उनकी करी हुई जो आचरणा तथा उनका व्यवहार सो भव्य प्राणियोंको छोडना चाहिये । वास्ते आगमकी साक्षी करके दिखाते हैं.

जंजीयम सोहिकरं पासत्थ पमत्त सजयाइणं ॥
वहुएहिवि आयरियंनतेणाजीयण ववहारो॥१६॥

भावार्थ—रात्रीको दीपक वगेरा कराना, ओर मोर पींछके डंडासन रखना, सादडी (चटाई)बीछाना सामेला करके आनेके वास्ते गामके बाहिर रहना, शोभाके वास्ते साबुसें कपडे धोना और केश नख प्रमुख समारना, फिर केशर वसज्जीसे वस्त्र रंगना, और श्री अरिहंत देवके सिवाय अन्य देवादिककी मानता करवानी, हमेशां एक जगह रहना इत्यादिक जो जो वहुत अशुद्ध आचरणा आत्माको मलीन करनेवाले पासत्थादिक वहुत लोगोने मिलके करी होय तोभी वो अशुद्ध आचरणा सिद्धान्तसे विरुद्ध जानना चाहिये। संसारकी वृद्धि करनेवाली जाननी। परन्तु पेश्तर जो जीत व्यवहार कहा सोही जानना. ॥ १६ ॥

अब भाव परम्परा द्रष्टान्त सहित दिखाते हैं.

ायकरंडरगिही वइकरंडतुल्लेहिं जायसुग्गाहिया ॥

भाव परंपरसुद्धासो हम्माआवि जिणआणा ॥१७॥

भावार्थ—जैसे राजाव धनाढ्यका आभूषण करंडीया होय ो बाहिरसे भी अच्छा और भीतरसे भी अच्छा होता है। इसी ारह शुद्ध संजम प्राप्तिसे जो अधिष्ठित साधु बाहिर व भीतरसे जेनाज्ञा सहित अच्छा होता है वो मुनिराज स्वच्छंदपने तथा अभिनिवेषपणे गच्छममत्व करके असार नहीं होता है। सोही श्री सुधर्मा स्वामीसे वर्तमानकाल तक भाव परंपरावंत शुद्ध साधु समजना. ॥ १७ ॥

अब सुविहित आचरण अंगीकार करके उसके लक्षण कहते हैं।

संघयण बुद्धियबलं तुच्छंनाणं सुविहिय जणाणं ॥

गीयत्थेहिं चिन्नातवाइकालिसु आयरणा ॥ १९ ॥

भावार्थ—काल, दोष, संहनन, बुद्धिबल इत्यादिक न्यून होनेसे जो दंड आया वो छ मास चार मासादिक दंड न बन सके तिस वास्ते महत्पुरुषोंको द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देखकर छट्ठ अट्ठमादिक तपकी आचरणा करके जिनाज्ञा सहित पर्यूषण प्रतिक्रमणकी तरह यह सर्व शुद्ध आचरणा जानना ॥ १८ ॥

अव सुविहित एक गीतार्थनेभी जो आचरणा करी होय तो वो आचरणा आत्मार्थि मुनिराजोंको आत्मशुद्धिके वास्ते ग्रहण करने योग्य है । सो सिद्धान्तकी साक्षी सहित दिखाते हैं.

यतःव्यवहार भाष्ये ।

जंजीयं सोहीकरं संविगय परायणेणदंतेणं ॥
इक्केणविय आयरियंतेण इजीएणववहारो ॥१९॥

भावार्थ—संसारभीरू परम सम्वेगवंत गीतार्थ गच्छ समुदायके हितके वास्ते एक गीतार्थने जो आचरणा प्रवृत्त करी और उसको वहुत गीतार्थोंने निषेध नहीं करी उसको जित व्यवहार कहना । ऐसी आचरणा आत्महितार्थिको ग्रहण करने योग्य जानना ।॥ १९ ॥

अव आचरणाके लक्षण कहते हैं ॥

असढेण समाइणं जंक थ्थइकेणइ असावज्जं ॥
ननिवारियमणेहिं बहुगुणमणुमेअ आयरियं॥२०॥

भावार्थ—असठ गीतार्थने आचरणा करी होय, फिर वो आचरणा कैसी होयाकि जिसको सिद्धान्त निषेध न करे ऐसी निर्दोष पापरहित और दूसरे किसी गीतार्थने खंडन नहीं करी होय वोही शुद्ध आचरणा जाननी ॥ २० ॥

अव जिसमें वलवुद्धिका काम नहीं होय; और जिसका खुलासा सिद्धान्तमें होय ऐसे कर्तव्यमें गीतार्थ मुनिराज आ-

रणामें हेर फेर नहीं करे, सो दो गाथासे दिखाते हैं ॥

आवस्सयाइकरणं इच्छामिच्छाइ दस विहायरणं ॥

चिवंदण पडिलेहणं संव्वच्छर पव्वपव्वतिहि ॥२१॥

अर्थ—षट आवश्यकादिका करना, इच्छा मिच्छादि दश विध समाचारी और दशविध यतिधर्म आचरण चैत्यवंदन पडिलेहन सम्वत्सरी पर्व तिथि ॥ २१ ॥

उदयति विहणंठवणा विणियाइ सुसाहुमाणणादाणं॥

इत्थ विकिं आयरणा बलबुद्धिका विहावेइ ॥२२॥

अर्थ—उदय, तिथि, नाम, स्थापना विनयादिक सुसाधुवोंको मान देना इत्यादि कृत्योंमें शुद्ध आचरणा शास्त्र संमतिसे बलबुद्धि संघयन अनुसार है; सो सर्वको प्रमाण करने योग्य है ॥

अब दोनों गाथाका भावार्थ कहते हैं ॥

आवश्यक प्रतिक्रमणादिकका करना, और इच्छा मिच्छादि दश विध समाचारी ग्रहण करनी फिर दश विध यतिधर्म आचरना और चैत्यवंदन पडिलेहन सम्वत्सरी पर्वतिथि तथा उदय तिथि स्थापना फिर विनयादिकका करना और सुसाधुअेंको बहु मानादिक देना इत्यादि कर्तव्योंमें आचरणा नहीं होती है जो होती है सो सिद्धान्त पंचांगीके प्रकट पाठसे होती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

अव आवश्यकादि कृत्य आज्ञा प्रमाणे करे तब फलका देनेवाला होता है, सो ही दिखाते हैं ॥

अणुयोगदारसुत्ते लोगुत्तरवस्सयं जिणवरेहिं ॥
आणाएअणुचिन्नं मुखफलं होइ भव्वाणं ॥२३॥

भावार्थ—लोकोत्तर आवश्यक जिस रीतिसे अनुयोगद्वार आवश्यकादि सूत्रमें कथन किया है, श्री वीतराग सर्वज्ञ देवकी उसही आज्ञा मुजव विधि सहित करे तबही फल दायक होय ॥ २३ ॥

अब लोकोत्तर आवश्यकादिककी भाव परंपरा कहते है ॥

आणाय अणुचिन्ना वस्सयकालंमि समण संघेहिं ॥
लोउत्तरी आठविआ परंपरा वियरागो हि ॥२४॥

भावार्थ—आज्ञा मुजव अनुष्ठान क्रिया साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, आवश्यकादिक कालमें स्थापन करे, सोही लोकोत्तर स्थापना भावपरंपरा वीतराग देवने कही ॥ २४ ॥

जंकिंचि अणुगणं जिणंद आणाए बहु फलं होइ ॥
जहवडतरुव्वबीयं विठारं लहइवुढंते ॥ २५ ॥

भावार्थ—जैसे एक वडके वीजमें अनंत वडकी सत्तासें शाखा प्रतिशाखाकी वृद्धि होय, तिसी तरह जिनाज्ञा संयुक्त थोडाभी अनुष्ठान करा हुवा वहुत फलदायक होता है ॥ २५ ॥

अत्र आराधक विराधकपर द्रष्टान्त कहते हैं ॥

केण विरंणारंको भज्जावयणेण कारीओधणवं ॥
सोविय तसुत्तिभत्तो पहाणपुरिसो कउजात्ति ॥२६॥

भावार्थ—किसी राजाने एक दरिद्री पुरुषको अपनी रानी-के कहनेसे वहुत द्रव्यादि देके धनवान् बनाया, और वो दरिद्री पुरुष भी राजाकी बहुत भक्ति प्रमुख करने लगा इस लिये राजाने उसको अपना अत्यंत मरजी वाला और भक्त समझ कर अपना प्रधान बना दिया। तात्पर्य जो पुरुष अज्ञानुसार वर्तने वाला होय उसको ऊंची पदवी मिलेही ॥ २६ ॥

तस्स विसव्वं भालियराया साहेइ सेव्व देसाय ॥
अंत उररंगिल्लो आणाभंगं न याणिइ ॥ २७ ॥

भावार्थ—राजाने अपना समझ कर कुल राज्यका भार देकर उस पुरुषको अपने अन्तःपुरकी संभाल वास्ते रक्खाथा। परन्तु वो मुर्ख अन्तःपुर कोही विगाडता हुवा राजाकी आज्ञा भंग करताहै यह बात नहीं समझताथा ॥ २७ ॥

कुशलेण घरंपत्तो राया जाणेई तस्स चरियाइ।
सुविडंबीउण सहसा खंडाखंडी कउेशीग्घं ॥२८॥

भावार्थ—वो राजा किसी समय कहीं युद्धको गयाथा, विजय करके पीछा आया। उस वक्त उस दारिद्री प्रधानके खोटे

लक्षण देख कर क्रोधायमान होता भया और उस पुरुषकी अनेक तरहसे विटंवना करके खंड खंड याने टुकडे करवा के मरवा डाला ॥ २८ ॥

अव इस द्रष्टान्तका द्राष्टान्त दिखाते हैं ॥

रायातह जिणदेवो जहदमगातहये होइ आयरिउ
सुद्धन्त समं आणाअणं तसोच्छेणंलहइ ॥ २९॥

भावार्थ—राजाके मुजवतो श्री वीतराग सर्वज्ञ देव और रंककी जगह वो आचार्य तथा अन्तःपुरसो जिनाज्ञा वे जिनाज्ञा विराधक पुरुष अनन्त काल जन्म मरणको प्राप्त होता है ॥३०॥

अब थोडाभी जिनाज्ञा मुजब कृत्य करा हुवा पापका नाश करने वाला होता है, सो दिखाते हैं ॥

थोवंपि अणुठाणं आणपहाणं करेइपावभरं ॥
लहुउर विकर पसरोदहदिचीतमिरपणासेइ ॥३१॥

भाभार्थ—थोडाभी अनुष्ठान जिनाज्ञा मुजव करनेसे पाप रासीका नाश करता है। जैसे वहुत सूर्यकी किरणें सूर्य उदय होनेसे दसों दिशाके अन्धकारका नाश करती है ॥ ३१ ॥

अरिहं विणानदेवोजे सिंचिंत्ते विणिच्छिओहोइ॥
तप्वयण करण यरणा सुसाहुणोतेसिंमहगुरुणो॥३२॥

भावार्थ—अरिहंत देवाधिदेवके सिवाय दूसरे चार नि-

कायके देव मेरे नमस्कार करने योग्य नहीं और चरण सित्तरी करण सित्तरीमें उद्यमवंत ऐसे सुसाधु गुरुसो मेरे नमस्कार करने योग्य है। परन्तु कुलिंगी पासथ्थे जिनाज्ञा विराधक भेष विडंबक वे लोग वंदना करने योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥

अब तीसरा तत्त्व धर्मकी पहचान कराते हैं ॥

गुरुवपणं सोधम्मोदिसुद्ध सिद्धंतभासिओ होई ॥
पवयणतहत्तिकरणं समत्तं बिंति जगगुरुणो ॥३३॥

भावार्थ—शुद्ध पंचमहाव्रत धारक, पांच इन्द्रीके विषय जीतनेवाले, शुद्ध पंचांगी मुजब समाचारीके करनेवाले, ऐसे सद् गुरुके मुखारविन्दसे प्ररूपा हुवा धर्म तथा प्रवचन सिद्धान्तके वचन तहत करना और सुदेव, सुगुरु, सुधर्म इन तीन तत्त्वोंको यथावत् सद्दहना, उसीका नाम समकित सर्वज्ञ वीतराग देवने फरमाया है ॥ ३३ ॥

अब जिस देवको वंदे पूजे उस देवकी आज्ञा न माने वो पुरुष उस देवका विराधक होता है सो दिखाते हैं ॥

जो पूइज्जइदेवो तव्वयणं जेनरा विराहंति ॥
हारं तिबो हिलाभंकु दिट्ठिराएण अन्नाणी ॥३४॥

भावार्थ—जिस देवको पूजे उसी देवकी आज्ञा विराधे वो पुरुष बोधिबीज सम्यक्त्वका नाश करता है और जिस देवको पूजना उस देवकी आज्ञा मानना यह अत्यन्त सुखका कारण है ॥ ३४ ॥

अब श्री जिनेश्वर वीतराग देवका पूजनादि कृत्य करे और उनकी आज्ञा नहीं माने उसकी इतनी बातें निरर्थक जाती है, सो दिखाते हैं ॥

पुयापच्चख्खाणं पोसह उववासदाण सीलाइ ॥
सव्वंपि अणुठाणं निरत्थयंकणय कुसुमवत् ॥३५॥

भावार्थ—धतुरेका पुष्प देखनेमें अच्छा परन्तु सुगंध करके रहित है । इसी लिये किसीके उपभोगमें काम नहीं आता । ऐसे ही पूजा, पच्चख्खाण, पोसह, उपवास, दान, शीयल, सामायिकादिक अनुष्ठान देखनेमें तो अच्छे परन्तु जिनाज्ञारूप सुगंध विना धतुरेके फूलकी माफक निरर्थक समझना ॥ ३५ ॥

अब जिस पुरुषकी आज्ञा आराधन करनेपर बुद्धि नहीं है उस पुरुषकों गाय, हिरन, वृक्ष, पत्थर, गधा, तिनखा (घास) और कुत्ते मुजब समझना सोही दिखाते हैं ।

जेसिंन आणबुद्धि विद्या विणाण चौरी मासुद्री ॥
तो गोमिअरुख पत्थर खरतिणसुणाइ सारीत्थं ॥३६॥

भावार्थ—जो पुरुष वा स्त्री विद्या विज्ञान और चतुराईवंत परन्तु जिनाज्ञा आराधन करनेकी बुद्धि नहीं है उस पुरुष वा स्त्रीको गाय, झाड, पत्थर, गधा, कुत्ते मुजब समझना ॥ ३६ ॥

अब ऐसे पूर्वोक्त कवीश्वरके कठिन वचन सुनकर सब पशुओं में गाय मुख्य है सो कहने लगी क्या कहने लगी सो दिखाते हैं ॥

भक्खेसुक्कतणाइ, दुद्धंअपेमी अमय सारिध्दी ॥
छगणाउ भूमिशुद्धि, लिंपणपयणाइकज्जेसु ॥ ३७॥

भावार्थ—मैं सूका घास भक्षण करके अमृत जैसा दूध देती हूं और मेरा गोवर नीपने भूमि शुद्धादिक कामोंमें काम आता है, तो फिर आज्ञा विराधक पुरुषको पशुओंकी ओपमा देना कैसे युक्त है ॥ ३७ ॥

फिरभी गाय कहती है कि ॥

पासवणं पावहरं, बालाणांपुट्ठि रोगहरणं च ॥
महउज्जाओदव्वा, पित्तविकाओरोयणयं ॥ ३८ ॥

भावार्थ—गायके मूतसे पाप हरण होते हैं; ऐसा लौकिक शास्त्रमें वचन है फिर बालकोंका रोग शान्त करता है, और मेरे दूधसे दही, छाछ प्रमुख होते हैं। गोवर प्रमुख द्रव्य पित्त विकार अजीर्णादि रोगोंका नाश करते हैं, और राजादिकोंको वश करते है ॥ ३८ ॥

फिरभी गाय कवीश्वरको कहती है.

आहोवडपमुहाइ, लहंतित्तितिमुणविमंसाओ ॥
चम्माओपायरक्खा, जलभायणयाइजायंति ॥३९॥

भावार्थ—गायके मांससे म्लेच्छादिकोंका पोषण होता है तथा चमडेसें पगोंका रक्षण होता है, और मशक होती है इससे गो-शब्दसे सामान्य पशुभी ग्रहण करने ॥ ३९ ॥

फिरभी गाय कहती है.

देवावसंतिपुच्छे, विप्पाणं भूमिभागसुरहिओ ॥
उवमिज्जंतोएसी, कइकुशलोकिंनलज्जोसि ॥४०॥

भावार्थ—गायकी पूंछमेंतो तीसक्रोड देवता वसते हैं ब्राह्मणोंके घर शुद्ध होते हैं तो फिर हे कवीकुशल ! हमारेमें इतने गुण होते हुवेभी आज्ञा रहित पुरुष निर्गुणीके बराबर किस तरह कहते हो तुमको लज्जा नहीं आती. ॥ ४० ॥

ऐसे गायके वचन सुने तव कवि, आज्ञारहित पुरुषको मृगकी ओपमा देने लगा तव मृग कहने लगा.

जाणमोगीय गुणामरणं, अप्पेसुकणरसीआय ॥
अइसिंगीओवादंता, भिक्खंपावंतिजोइदं ॥४१॥

भावार्थ—मृग राग रागनीके जाननेसे मृत्यु अंगीकार करता है और सींगकी शृंगी बजाकर योगी लोक भिक्षा ग्रहण करते हैं.॥४०॥

फिरभी मृग कहती हैकि.

महचम्माओ सिज्जा,पुणपुछियकणय कुंदणाकरण
महनामेणमयंको मियत्थिनयणाणउवमाणं॥४२॥

भावार्थ—मृगचर्म सज्जादिक अनेक कार्यमें काम आता है और मृगाचिन्ह मृगनयन ओपमासे मृगांक और मृगाक्षी कहे जाते हैं ॥ ४२ ॥

फिरभी मृग कहती हैकि.

पढमपहरं मिदक्खिणं सउणामणांति पांडियाविसया ॥
उवमिज्जंतोएसिंकइकुशलोकिंनलज्जोसि ॥ ४३ ॥

भावार्थ—मृगके प्रथम प्रहरमें जीमने हाथ मिलनेके शुकन मानते हैं,इत्यादिक गुण मेरेमें हैं आज्ञा विराधक पुरुषमें मेरे जैसा एकभी गुण नहीं है इस लिये हे कविकुशल! आज्ञा विराधक पुरुषको मेरी ओपमा देनेमें तुमको लज्जा नहीं आती. ॥४३॥

अब मृगके वचन सुनकर उपयुक्त गुण सत्य जानकर कविने आज्ञा विराधक पुरुषको वृक्षकी ओपमा दीनी तब वृक्षक कहने लगा कि.

मत्तंडचंडादिधीइ, तावतावेणखिन्नाखिन्नाणं ॥
फेडेमोपंथोपसमं, पहियाणं पंथखिन्नाणं ॥ ४४ ॥

भावार्थ—सूर्यकी अत्यंत तेजमय किरणोंसे सताये हुए अत्यंत खिन्न जीवोंका संताप दूर करता हूं। रास्ते चलनेवाले मुसाफरोंके परिश्रमको दूर करता हूं; याने मेरी छायामें विश्राम लेनेसे उनकी थकावट दूर होती है. ॥ ४४ ॥

फिरभी वृक्ष कहता होकि.

अप्पेचारुफलाइं, गीहाइंकज्जेसुपोयनावाए ॥
वीणासुयंगवंसु, लिपढहडुलाइतोरणया ॥ ४५ ॥

भावार्थ—वृक्षके स्वादिष्ट फल फूल भोगोपभोगमें आते हैं; और वृक्षका काष्ट वगेरा मकान, दुकान, हवेली, महल, जहाज

छोटी नौका, वीणा, मृदंग, बांसरी, पडह ढोल, तोरण इत्यादि संसारी कार्यमें काम आते हैं. ॥४५॥

फिरभी वृक्ष कहता हैकि मैं साधु मुनिराजोंकेभी काम आता हूं सो सुनो.

रयहरणहत्थदंडा, पडिगहमाइणिकज्जसाहुणं ॥
झाडोविकप्परुक्खो वणस्सइसव्वाउझाडनामाओ ४६

भावार्थ—रजोहरण, दंड, पात्र प्रमुख वृक्षके अवयव साधुओंके काम आते हैं, और कल्पवृक्ष प्रमुख सब वनस्पति वृक्षके नामसे पहचाने जाते हैं. ॥४६॥

फिरभी वृक्ष कहता हैकि.

वत्थासणघुसिणचंदण, चेइकज्जेसुरोगहरणेसु ॥
उसहिपमुहाइणं, किंबहुवन्नोमिअप्पणया ॥ ४७ ॥

भावार्थ—वस्त्री, आसन, केशर, चंदन, जिन चैत्यादि कार्यमें काम आते हैं, फिर रोग वगेरा मिटानेमें औषध प्रमुख वनस्पति विशेष इत्यादि बहुत कार्योंमें उपगारी वृक्ष होते हैं। इस वास्ते हे कविकुशल ! आज्ञा विराधक पुरुषकों मेरी उपमा देनेमें तुमको लज्जा नहीं आती. ॥४७॥

ऐसे पूर्वोक्त वृक्षके वचन सुनकर आज्ञा विराधक पुरुषको निर्गुणी पत्थरकी उपमा दीनी तब पत्थर कहने लगाकि.

मत्तोजिणहरपडिमा, घरहट्टविमाणधामदुग्गाइ ॥
पारसपत्थरपासा, लोहोवियकंचणोहोइ ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जिन प्रसाद, जिन प्रतिमा, घर, दुकान, हवेली, देवविमान, गढ, कोट, सुन्ना इतनी चीजें पत्थरसें होती है.॥४८॥

फिर भी पत्थर कहता है कि ॥

चिंतिज्जंतंपरइ, चिंतामणीकिंनहुज्जपत्थरयं ॥
जाइरयणेहिं, ठवियंकुत्तीयावणयसंबंध ॥ ४९ ॥

भावार्थ—मनो वांछित पूरे ऐसा जो चिन्तामणि रत्न सो क्या पत्थर नहीं है ? और भी रत्नसो कुल पत्थर ही है ॥४९॥

फिर पत्थर कहता है कि ॥

तुट्ठोहरइमिरोरं, रुट्ठोमारेमिदेवसंकलिऊ ॥
उवमिजंतोएसिं, कइकुशलोकिंनलज्जेसि ॥५०॥

भावार्थ—देवाधिष्टित पत्थर तुष्टमान हुवा मारण, मोहन दरिद्र प्रमुख दूर करूं इत्यादि सर्व कार्य पत्थरसे होते हैं, इतने गुण मेरेमें होते हुए भी आज्ञा रहित पुरुषको मेरी उपमा देनेमें हे कवि कुशल ! तुम्हारेको लज्जा नहीं आती ॥ ५० ॥

पत्थरके पूर्वोक्त वचन सुन कर आज्ञा विराधक पुरुषको पत्थरसे भी निर्गुणी समझ कर खर (गधे) की उपमा देने लगे; तब गधा कहने लगा कि ॥

दिणंवहेमिभारं, सीउउन्नसहमिसव्वयाकालं ॥
संतोषेचिठीमि लज्जंकारेमिआरुहणं ॥५१॥

भावार्थ—गद्धा भार (बजन) उठाता हुवा सर्दी, गरमी सहन करता है; और संतोषमें रहता है फिर अपने उपर बैठने वालेको लज्जायमान करता है ॥ ५१ ॥

गधा फिर कहता है कि ॥

लंघिज्जंतिनसीमं, समुत्तिसवणाओसुवंसनखइणो॥
जाणेपहरपमाण, गमणागमणेवसुहमसुहं ॥ ५२ ॥

भावार्थ—गर्दभ मर्जादा उलंघन नहीं करता, शुभ अशुभ शुकन जानता हूं महरका प्रमाण गमन करनेका वक्त जानता ॥ ५२ ॥

फिर भी गधा कहता है कि ॥

मेहुणसन्नारुढे, पासंतिममंगमागमाविहिणु॥
तेसिंमणवंच्छियत्थं, साहेमिसव्वकालेणं ॥ ५३ ॥

भावार्थ—प्रयाण करते समय गधेको मैथुनमें आरूढ हुवा देखे तो मनोवांछित फल प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥

इत्यादि गर्धभके पूर्वोक्त वचन सुन कर कवीश्वर शरमिंदा हो कर आज्ञा रहित पुरुषको तिनखेकी ओपमा देने लगे;तव तिनखा कहने लगा कि ॥

जेरंकादिकपमुहा, गिह्वाणीछायंतिकुणइजीवत्तं ॥
भक्खंताणपसूणं, पुट्ठिदुधंचअप्पेमि ॥ ५४ ॥

भावार्थ—घाससें मकान ढके जाते हैं,पशु आदि तिर्यंच भक्षण करके शरीरको पुष्ट करते हैं और फिर दूध देते हैं। तथा गरीब लोग मेरेको वेच कर अपनी आजीविका करते हैं ॥५४॥

फिर भी तिनखा कहता है कि ॥

संगामेरोसिल्लानहणंतितिणंमुहम्मिलिताणं ॥
जायंतियआनिगंथा, सिज्जादंताइसुद्धिकण ॥५५॥

भावार्थ—संग्राममें तिनखा मुखमें लिये हुवेको शत्रु भी नहीं मारता है; और मुनिराजभी सज्जा, दांत साफ करनेके वास्ते तिनखेकी याचना करते हैं ॥ ५५ ॥

फिर भी तिनखा कहता है कि ॥

दब्भतिणेणंविप्पा,पवित्तकरणाइवेयपाठेणं ॥
उवमिज्जंतोएसिं, कइकुशलोकिंनलज्जोसि ॥५६॥

भावार्थ—दरभा करके ब्राह्मणोंके घरमें जो वस्तु उसको ग्रहणादिकमें शुद्ध करते हैं। इत्यादि मेरेमें अनेक गुण होते हुवेभी आज्ञा रहित पुरुषको मेरी उपमा देते हुवे हे कवि कुशल ! तुमको शर्म नहीं आती ॥ ५६ ॥

ऐसे तृणके पूर्वोक्त वाक्य सुन कर कविने आज्ञा रहित पुरुषको श्वानकी ओपमा दीनी तब श्वान कहने लगा कि ॥

साहसिअंबहुलद्धं, भक्खेलद्धेकरेमिसंतोसं ॥
सुहदीहनिंदजागर, सउज्जमंसुरिमाज्जुत्तं ॥ ५७ ॥

भावार्थ—कुत्तेमें साहासिकपना, फिर प्रचूर भक्षी अल्प भोजन मिले तो भी संतोष, नहीं मिले तो भी संतोष, फिर सुखसे निद्रामें सोता हुवा भी तुर्त जगता है और मालिकका वफादार सुगुण सहित श्वान होता है ॥ ५७ ॥

फिर भी श्वान कहता है कि ॥

सामिभत्तकयणुं, वाडिरक्खेरएमिमेहुणएं ॥
एहिसमंतुलंतो, सुपंडियकिंनलज्जेसिं ॥ ५८ ॥

भावार्थ—स्वामी भक्त किये हुए उपकारका बदला देने वाला, वाडा दिककी रखवाली करनेवाला, रूतु कालमे मैथुन करने वाला, इत्यादि गुण मुजमें होते हुवेभी आज्ञा विराधक पुरुषका मेरी उपमा देते हुवे हे कवि कुशल! तुम्हारेको लज्जा नहीं आती है ॥ ५८ ॥

पूर्वोक्त वचन श्वानके सुनकर कवीश्वर लज्जायमान होता हुवा आगम भ्रष्टाचारीका शून्य भावकी उपमा देता हुवा, सो कहते हैं ॥

नियनियगुणमाहप्पंकाहिओ,लज्जाविओयकविराओ
आगमभट्ठायारा, लहरिसंखुव्वाविणेया॥ ५९ ॥

भावार्थ—अपने अपने गुण कहकर जब ऊपरोक्त पशु आदिक कवीश्वरको लज्जायमान करते हुवे। तब कवीराज कहते हैं कि, आगम भ्रष्टाचारीको जलकी लहरों के कल्लोलकी तरह समझना चाहिये ॥ ५९ ॥

फिर भी आगम भ्रष्टाचारीको उपमा देते हैं ॥

वंझापुत्तसमाणा, भूमिसिलंधुव्वगयणपुठिव्व ॥
अंधग्गेवरतरुणी, हावभावइसारित्थ ॥ ६० ॥

भावार्थ—वंध्यापुत्रवत्, भूमिके छिद्र तुल्य, गगन मुष्टीवत्, अंधे पुरुषके आगे स्त्रीके हाव भाव, जैसे यह वस्तु निरर्थक हैं, इसी तरह सिद्धान्तकी आज्ञा विरुद्ध है आचरणा जिसकी, ऐसा भ्रष्टाचारी निरर्थक समझना ॥ ६० ॥

फिर भी आज्ञा रहित पुरुषका ओपमा देते हैं ॥

बहिराणकणजावो, वीणाएवायणंजहालोए ॥
तहआणपारिभट्ठं, नडुव्वसाविडंबगभरणं ॥ ६१ ॥

भावार्थ—बहेरे आदमीको गीत सुनाना अथवा वीणादि बजाना निष्फल हैं, इसी तरह आज्ञा रहित पुरुषका चारित्र निष्फल जानना ॥ ६१ ॥

फिर आगम भ्रष्टाचारी कैसा है कि ॥

आणाभट्ठंचरणं, वेसादासीणणेहतुल्लं ॥
किंवागफलमसारं, तत्तायसीसाइअनीरं ॥ ६२ ॥

भावार्थ—वेश्या का व दासीका स्नेह अथवा किंपाकके फल जैसे किसी कामके नहीं होते; और स्वाति नक्षत्रका जल तपे हुए लोहे पर डाला जाय तो निरर्थक होय, इसी तरह आज्ञा रहित पुरुषका चारित्र निरर्थक समझना ॥ ६२ ॥

फिर आज्ञा रहितका चारित्र कैसा है कि ॥

गयभूतकाविठफलं, पयंगरंगुव्वतहयमिग्गतन्हा ॥
विणयबहुणंरुवं, संझारागुव्वविज्जुलयं ॥ ६३ ॥

भावार्थ—हाथीका खाया हुवा कबीठका फल, तथा पतंगका रंग, और मृग तृष्णावत् तथा विनय बगेरका रूप, व सायंकालका बादलका रंग और विजलीका प्रकाश इतनी वस्तुओं के समान आज्ञा रहित पुरुषका चारित्र निष्फल समझना। तात्पर्य इतनी चीजोंसे गरज सरे तो आज्ञा रहित पुरुषके चारित्रसे भी मोक्ष प्राप्त होय, अर्थात् न होय उलटा कर्म बन्धन होकर संसारकी वृद्धि होय ॥ ६३ ॥

अब आज्ञा रहितका धर्म कैसा है सो दिखाता हैं ॥

नयणविहिणंसुमुहं,रसोवइआलवणभावबाहिरिया ॥
निइविणाकिंरज्जं, पिम्मंविणाणपरबंधो ॥ ६४ ॥

भावार्थ—जैसे नेत्रोंके विना मुख नहीं शोभा देता तथा अनेक प्रकारकी रसोइ एक निमक विना स्वाद नहीं लगती है; और न्याय विना राज्य शोभाको प्राप्त नहीं होता उलटा नाशको

प्राप्त होता है। ऐसे ही प्रेम विना आपुसमें सगाई सम्वन्ध नहीं होता, इसी तरह आज्ञारहित धर्म को अधर्म समजना ॥ ६४ ॥

फिर आज्ञा रहित धर्म कैसा है कि ॥

लच्छिबिणाणसुक्खं, सोआरविवज्जिअंचवक्खाणं ॥
पुत्तंविणाणवंसो, तहआणविवज्जियोधम्मो ॥६५॥

भावार्थ—लक्ष्मी विना सुख नहीं होता, अर्थात् संसार सुख लक्ष्मी विना नहीं होता। इसी तरह आज्ञा रहित पुरुषको आज्ञारूप लक्ष्मी विना मोक्षरूप सुखकी प्राप्ति नहीं होती; और पुत्र विना वंश शोभाको प्राप्त नहीं होता, अथवा न्याय,व्याकरण, कोष, काव्य पढे विना व्याख्यान देना शोभा नहीं देता, इन पूर्वोक्त द्रष्टान्तोंसे करके आज्ञा रहित पुरुष धर्म धर्म तो बहोत करे परन्तु शोभा नहीं पावे अर्थात् निष्फल होय ॥ ६५ ॥

अब जिनाज्ञा रहित धर्म करा हुवा कुछ फल नहीं देता सो द्रष्टान्त सहित दिखाते हैं ॥

इक्कडयसुणरहिओदसगुणीओतहइकाडिमाहप्पं ॥
तव्वीरहेकिंसन्नालेहइसंखाइसहमिलं ॥ ६६ ॥

भावार्थ—जैसे एकका आंक पहिले लिखकर जितनी शुन्न उसके ऊपर रखोगे उतनी गिन्ती अधिक वढती जायगी, परन्तु एका पहले नहीं रक्खा जाय और खाली शुन्य लिखें तो कुछ संख्याका प्रमाण नहीं होता ॥ ६६ ॥

यह दृष्टान्त हुवा अब इसका द्राष्टान्त दिखाते हैं॥

इक्कंजिणंदआणा, सुन्नोवामिंआइआणरहिआइं ॥
वयदाणसीलनाणं, नलहइइक्कंपितंबडयं ॥ ६७ ॥

भावार्थ—जिस तरह एकके आंक लिखे बगैर शुन्य गिन्तीमें नहीं आती इसी तरह जिनाज्ञा बिना व्रत सो साधुके पंच महाव्रत व श्रावकक बाराव्रत, दान सो सुपात्रादिकको दिया हुआ, शील सो ब्रह्मचर्य व्रतादिक, नाणसो श्रुतज्ञान, इन सबका एक पैसा भी मूल्य नहीं पावे। तात्पर्य यह है कि जिनाज्ञासे विरूद्ध सर्व क्रिया अनुष्टान, जप, तप, नियम, सामायिक, प्रतिक्रमण पच्चखाण आदि एका बिनाके शुन्य समझना चाहिये ॥ ६७ ॥

फिर भी आज्ञा रहित अनुष्टानका निरर्थकपना दिखाते हैं।

जोकोइआणारहिओ, पूआपमुहंकरेइतिकालं ॥
तस्सविसव्वमसुद्धं, आणावज्जंअणुठाणं ॥६८॥

भावार्थ—जिनाज्ञा सूत्र विधि विना पूजा प्रमुख तीनों कालके अनुष्टान अशुद्ध समझना ॥ ६८ ॥

अब यहां कोई ऐसी शंका करेत हैं कि विधि अविधि आज्ञा अनाज्ञा जैसा जैसा चला आता है तैसा ही करे, परन्तु राग द्वेष नहीं करे तो फलदायक ही होता है ॥ ऐसी शंका करनेवालेको आचार्य महाराज द्रष्टान्त सहित आज्ञा अनाज्ञा अर्थात् मिश्र दृष्टि वालेका अनुष्टानका निष्फलपना दिखाते हुए समाधान करते हैं।

जहकोइमिस्सदिट्ठी, उभओकालं करेइसज्झायं ॥
नालियर दीवमणुआ अन्नेराउन्नदोसत्तं ॥ ६९ ॥

भावार्थ—जिस तरह नालियरद्वीपमें नालियर बहुत होते हैं, उससे वहांके रहनेवाले मनुष्य नालियर कोही खाते हैं,परन्तु अन्न नहीं मिलनेसे अन्न नहीं खाते और अन्नके ऊपर उनका राग द्वेषभी नहीं होता,इसी तरहसे कोई जीव मिश्रदृष्टि हुवा थका आवश्यकादि क्रिया करे तो उसकी मिश्र भावसे क्रिया अनुष्ठान निष्फल समझना ॥ ६९ ॥

अव मिश्र धर्मवाले कैसे होते हैं सो दिखाते हैं ॥

तेडमरुव्वमाणितुल्ला,घंटालालुव्वककचाकिंनणया॥
कुक्करच्चम्मरसिलो, सायंनलहेइ गुसिणस्स ॥ ७० ॥

भावार्थ—वो मिश्र दृष्टीवंत पुरुष कैसे हैं कि जैसे डमरु कमनी दोनों तरफसे बंधा हुवा होता है. इसी तरह मिश्र दृष्टीको विधि और अविधि दोनों कर्म बंध करनेवाले होते है। फिर कैसे है कि घंटाके लोलककी तरह। जैसे घंटाका लोलक दोनों तरफ टक्कर खाता है इसी तरह मिश्र दृष्टिवाला पुरुष दोनों तरफ गोते खाता है। फिर वो पुरुष चक्रधारा समान है जैसे चक्र करवतकी धारसे दोनों तर्फ काटा जाता है, इसी तरह मिश्र दृष्टि विधि अविधिसे दोनों तर्फ काटा जाता है। फिर वो पुरुष श्वानकी तरह है। जैसे श्वान रसका स्वाद नहीं जानता। इसी तरह विधी अवि-

धिसे करा हुवा अनुष्ठान धर्मरूप रसके स्वादको वो मिश्र दृष्टि पुरुष प्राप्त नहीं होता है ॥ ७० ॥

अब धर्मका मूल क्या है, सो दिखाते हैं ॥

दंसण मूलोधम्मो, उवइठोजिणवेरेहिंसीसाणं ।
तंसोऊणसकन्ने, दंसणहीणोनवंदिव्वो ॥ ७१ ॥

भावार्थ—धर्मका मूल दर्शन कहतां सम्यक्त श्री वीतराग सर्वज्ञ देवने शिष्योंको उपदेश किया सो, कानोंसे सुना । तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्व रहित पुरुषको वंदनादिक नहीं करना॥७१॥

अब बहुत शास्त्र पढा होय तो भी सम्यक्त्व बिना संसारमें परिभ्रमण करता है सो दिखाते हैं ॥

समत्तरयणभठ्ठा जाणंता बहु विहावि सत्थाइ ॥
सुद्धा राहण रहीआ, भमंति तत्थेव तत्थेव ॥७२॥

भावार्थ—सम्यक्त्व रत्नसे भ्रष्ट याने जिन दर्शनसे भ्रष्ट पुरुष अनेक प्रकारके शास्त्र पढा हुवा होय तो भी संसारमें बारम्बार भ्रमण करता है ॥ ७२ ॥

अब जो पुरुष दर्शन भ्रष्ट होय सो आज्ञादिकसेभी भ्रष्ट समझना सो दिखाते हैं ॥

जे दंसणेण भठ्ठा, नाणेभठ्ठा चरित्तभठ्ठाजे ॥
एएभठ्ठविभठ्ठा, सेसंपिजणं विणासंति ॥ ७३ ॥

भावार्थ—जो पुरुष सम्यक्त्व (दर्शन) भ्रष्ट होय उसको ज्ञान भ्रष्ट और चारित्र भ्रष्ट जानना; और चारित्र भ्रष्ट होय

उसको दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनोंमे प्रायःकरके भ्रष्ट समझना॥७३॥

अब जो पुरुष खुद भ्रष्ट होता है वो दुसरोंको भी झूंठे दोष लगाता है सो दिखाते हैं ॥

जेकेवीधम्मसीला संजम तव नियम जोगजुत्ताय॥
ताणं दोष भणंता भगा भगतणाविंति ॥ ७४ ॥

भावार्थ—जो कोई खुद तप संजमसे भ्रष्ट हुवा थका होय वो अपने दोष छिपानेके वास्ते गुणवंत उत्तम मुनिराजोंका दोष लगाता है परन्तु बुद्धिमानोंको समझना चाहिये कि वे खुद ही दोष युक्त है ॥ ७४ ॥

अब जो पुरुष दर्शन भ्रष्ट होय सो कदापि सिद्धिको प्राप्त नहीं होता है सो हि दिखाते हैं ॥

जह मूलंमि विणट्ठे दुमस्स परिवार नत्थी परिवुढी॥
तह जिण दंसण भट्ठा मूल विणाठण सिऊंति ॥७४॥

भावार्थ—धर्मरुप वृक्षका मूल जो सम्यक्त्वसो विनाश हुवा थका मोक्षरूपी फल फूल धर्म वृक्षको प्राप्त नहीं होते हैं. ७४

अब मोक्ष मार्गका मूल द्रष्टान्त सहित दिखाते हैं.

जहमूलाओखंधो, साहापरिवार बहुगुणो होइ
तह जिणदंसणमूलो निदिट्ठे मोखमगस्स ॥७५॥

भावार्थ—जैसे वृक्षके मूल होय तो स्कंधशाखा प्रतिशाखादि बहुत गुणयुक्त होय, इसी तरह धर्म वृक्षका मूल सम्यक्

दर्शन होय तो व्रतादिककी वृद्धि होय तात्पर्य यह हैकि मोक्ष मार्गका मूल जिन दर्शन समझना ॥ ७५ ॥

अब सम्यक्त्वके फल दिखाते है.

लघुणय मणुयत्त सहिय तहउत्तमेण गुत्तेण ॥
लघुणय समत्तंअखय सुखंचमसुख च ७६

भावार्थ—सम्यक्त्वके प्रभावसे मनुष्यभव सहित उत्तम जाति गोत्र मिलता है फिर संसारके सुख भोगकर परम्परासे मोक्षको प्राप्त होता है. ॥ ७६ ॥

अब जिन वचनकी महिमा वर्णन करते हैं.

जिणवयणंउसहमिणंविसयसुहाविरेअणंआणभभूयं
जरमरणवाहिहरणं. खयकरणंसव्वदुःखाणं ॥७७॥

भावार्थ—जिन वचन हैसो विषय, कषाय, जन्म, जरा, मरणरूप समस्त दुःख हरने वास्ते औषधि समान है। जिस तरह अच्छी औषधि खानेसे सर्व रोगोंका नाश होता है; तैसेही जिन वचन आराधन करनेसे समस्त संसारके दुःखोंसे जीव मुक्त होता है. ॥ ७७ ॥

अब जिस पुरुषको जिन वचन सुनकरभी कंखामोहिनी अलग नहीं होय उसके ऊपर कहते हैं.

जिणवयणंउसेहेणं, कंखावाहिनाफिट्टएजेसिं ॥
आमियंविसुव्वातिसिं, अणंतसोलहइमरणाइं ॥७८॥

भावार्थ—जैसे सर्पको अमृत पानेसे उलटा जहर पैदा होता है, तिसी तरहपर दर्शन अभिलाषी पुरुषको जिन वचनरूप अमृतभी विष होके परिणमन होता है; जिससे अनंतकाल संसारमें भ्रमण करता है. ॥ ७८ ॥

अब जो आगमसे भ्रष्ट आचारवालेको मदत देते हैं, वा उसकी प्रति पालना करते हैं उसका क्या फल है, सो दिखाते हैं।

समयायारभठाणं, जाणंतालज्जगारवभएणं ॥
तेसिंपिनत्थिबोहिं, पावंअणुमोअमाणाणं ॥ ७९ ॥

भावार्थ—आगमसे भ्रष्ट समाचारी करनेवाले पुरुषको लज्जा करके अर्थात् यह मेरी जातका है या मेरे कुलका है, या मेरा मित्र है, इस वास्ते मेरे सिवायं इसकी प्रतिपालना कौन करे, अथवा ऐसा विचारके पालन करोकि यह सब लोगोंके सामने मेरी वडाई करते हैं, इस वास्ते इनको अच्छी तरहसे रखना चाहियें, अथवा मंत्र जंत्र आदिकके भयसे करके पालन करे। इत्यादि बातें जानता हुवा जो आगम भ्रष्ट समाचारी चलानेवालेकी प्रतिपालना करते हैं उन प्राणीयोंको उसके अनाचारकी अनुमोदना करनेवाले बोधिबीज करके रहित समजना।

अब शुद्ध गच्छ परम्परामें बसने वाले जो पुरुष हैं, उनहीको दर्शन सम्यक्त्व होता है सो दिखाते हैं.

गच्छाचारंदुविहंतिसुविजोएसुसंजमोठेवि ॥
नाणंमिकरणशुद्धे, अभिक्खणंदंसणंहोई ॥ ८० ॥

भावार्थ—शुद्ध समाचारीको अंगीकार करना, शुद्ध विनयादिकका सेवन करना, वोही गच्छ कहलाता है। परन्तु पंचांगी विरुद्ध आचरणासे गच्छ नहीं कहा जाता। पंचांगी प्रमाणे आचरणा शुद्ध गच्छमें रहा थका करण जोगकी शुद्धि होती है; और करण जोगकी शुद्धि होनेसे निरंतर भव्य प्राणियोंकी दर्शन शुद्धि होती है. ॥ ८० ॥

अब सर्दहनारूप व्यवहारादि सम्यक्त्वके लक्षण कहते हैं.

जीवाइसद्दहणंसमत्तं, जिणवरेहिंपन्नतं ॥
ववहारनिच्छएणंजाणंतोलहइसम्मत्तं ॥ ८१ ॥

भावार्थ—सर्वज्ञ देव प्ररूपित जीवादि नव पदार्थ उनको निश्चय व्यवहार सहित सर्देहे तो सम्यक्त्व पावे. ॥ ८१ ॥

अब मोक्षकी प्रथम पाउडी बतलाते हैं.

जिणपन्नत्तंधम्मं, सद्दहमाणस्सहोइरयणमिणं ॥
सारंगुणरयणायए, सोवाणंपढममोक्खस्स ॥८२॥

भावार्थ—जिन वीतराग देवके प्ररूपे हुवे धर्मकी जिसको श्रद्धा होय, सो प्राणी सम्यक्त्व रत्नरूप मोक्ष महलका प्रथम पावे. ॥ ८२ ॥

अब वंदने योग्य पुरुष कौन हैसो दिखाते हैं.

दंसणनाणचरित्ते, तवनियमोविणयखंतिगुणइल्ला ॥
एएविवंदणीया, जेगुणवाइगणधराणं ॥ ८३ ॥

भावार्थ—दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप नियमादिकके पालने वाले होय वोही पुरुष गणधरादिकके गुणग्राम बोलनेवाले समझना, और उनही पुरुषोंको जिन शासनमें वंदन करने योग्य जानना तथा जो पासत्थादिक गच्छ ममत्वी कदाग्रही हैं, सो तप नियम चारित्रादिककी निंदा करानेवाले गणधरादिकोंके अवर्णवाद बोलनेवाले जानना. ॥ ८३ ॥

अब जो पुरुष आज्ञा संयुक्त चलने वाले महात्मा उपर द्वेष मत्सर रखते हैं उनको मिथ्यादृष्टि जानना सो दिखाते हैं.

आणाजुत्तंसंघंदट्ठुं, जोमन्नएणमच्छरिओ ॥
सोसंजमपडिवन्नोमिच्छादिट्ठिमुणेयव्वो ॥ ८४ ॥

भावार्थ—जो प्राणी सिद्धान्त पंचांगी प्रमाणे आज्ञा संयुक्त समाचारीके करनेवाले, उनको गच्छ ममत्व कदाग्रही कहे, कि यह तो नया है, हम ठेठकी परम्परामें हैं, पंचांगी मुजब तो समाचारी पूर्व कालमेंथी, अभी तो गच्छ ममत्व परंपरासे चले वोही संघ है। ऐसे वचन कह कर लोगोंको भ्रम जालमें डालते हैं; और जो आज्ञा मुजब चलने वाले है, उनको चतुर्विध संघ नहीं मानने फिर उनसे मत्सर द्वेष अभिमान करते हैं ऐसे कदाग्रही पुरुषोंको संजम पालते हुवेभी मिथ्यादृष्टि समझना. ॥८४॥

अब जो पुरुष पंचांगी प्रमाणे आज्ञा संयुक्त साधुको देख करके संताप मनमें धरते हैं जिसका फल कहते हैं.

अमराणवंदियाणं, रुवंदठुणजेसिमणतावो ॥
सोसंतावेतेसिंभवेभवेरहोज्जणंतगुणो ॥ ८५ ॥

भावार्थ—आज्ञा संयुक्त मुनिराजको देखकर जिस पुरुषको संताप उपजे वो पुरुष संतापके फल भवोभव अनंतिवार भोगवे। तात्पर्य यह हैकि वो पुरुष अनंताकाल संसारमें भ्रमण करता है.।

अब जो पुरुष आगम प्रमाणे आचारमें प्रवर्तते हुवेका गारव करते हैं, उसका फल दिखाते हैं

आगममायरणाणं सच्चवए सेकहासुरासिआणं ॥
जेगारवं करंति सम्मत्त विवज्जिआ हुंति ॥८६॥

भावार्थ—आगम प्रमाणे आचारमें प्रवर्त्तते हुए सत्य उपदेशके देनेवाले, याने जैसा सिद्धान्तोंमें कथन किया है, वैसा ही प्ररूपे परन्तु लोकलज्जा तथा गच्छ ममत्व और अपनी पूजा प्रतिष्टा वढानेके वास्ते सिद्धान्तसे विरुद्ध कदापि नहीं प्ररूपते हैं। ऐसे पुरुषोंके उपर जो प्राणी गारव (अभिमान) तथा द्वेषादि करे, तो वो प्राणी सम्यक्त्व करके रहित होता है अर्थात् सम्यक्त्वका नाश करनेवाला होता है ॥ ८६ ॥

अब मोक्षके कारण दिखाते हैं

नाणेण दंसणेणय तवेण संवरिण संजमगुणेण ॥
चउण्हंपिसमाउगे, मुखोहिं जिणेहिंपन्नत्तो ॥८७॥

भावार्थ—ज्ञान, दर्शन, तप, सम्वर इन चार गुणोंके मिलनेसे संजम गुण होता है। उस संजमवंत पुरुषको मोक्ष होती है। परन्तु एकले श्रुतपाठीको मोक्ष नहीं होती ॥ ८७ ॥

अब जातिआदि वंदने योग्य है, वा गुण वंदने योग्य है, जिसपर कहते हैं ॥

नइदेहं वंदिजइ नजाइ कुलरुववणरुवंच ॥
गुणहीणं कोवंदे समणंवासा वयंवावि ॥ ८८ ॥

भावार्थ—शरीर वांदने योग्य नहीं, है कारणकि सर्व प्राणी मात्रके शरीर होता है। तथा ज्ञातीभी वांदने योग्य नहीं, कारण कि जाति सर्व जीवोंके है। कुलभी वांदने योग्य नहीं, क्योंकि सर्व प्राणियोंमें पांचों वर्ण होते हैं। फिर रूपभी वांदने योग्य नहीं। क्योंकि सर्व जीवोंमें पुण्य प्रकृती मुजब रूप होता है। सो देहादिक वस्तु गुण करके रहितको कौन अज्ञानी वांदे। अथवा साधु वा श्रावक याने नाम श्रावक, नाम साधु, साधु नाम जाति, श्रावक नाम जाति, साधु नाम श्रावकका कुल, नाम साधु नाम श्रावकका वर्ण रूप ये सर्व गुणरहित होनेसें वांदने योग्य नहीं। परन्तु गुण करके सहित होय सोही वांदने योग्य है। अर्थात् जिसमें साधु के वा श्रावकके गुण होय सोही नमस्कार करने

योग्य है। गुणाधिकको नमस्कार करना ऐसा आगम वचन है। तात्पर्य यह है। कि न्यून गुण स्थानकवाला अधिक गुण स्थानक वालेको नमस्कार करे ॥ ८८ ॥

अब ज्ञानादिकका सार क्या है सो दिखाते हैं ॥

नाणं नरस्स सारं, सारंनाणस्स शुद्धसम्मत्तं ॥
सम्मत्तसारचरणं, सारं चरणस्स निव्वाणं ॥८९॥

भावार्थ—ज्ञान है सो मनुष्य भवका सार है फिर ज्ञानका भी सार शुद्ध सम्यक्त्व और सम्यक्त्वका सार चारित्र है और चारित्रका सार मोक्ष है ऐसा समझना ॥ ८९ ॥

अब सम्यक्त्व रहित पुरुषकी क्रियाका निष्फलपना दिखाते हैं।

दाणं वसणंलिद्धं, सीकंरंकुव्व पालणं अहलं ॥
जरदाहुव्व तवाइ, झाणंदुःखेनीयाणंच ॥९०॥

भावार्थ—समकित विना दान, शील, तप, ध्यान करना सो सर्व संसार वृद्धिके कारन जानने। परन्तु इससे भव भ्रमण नहीं घटता है ॥ ९० ॥

अब जो क्रिया कुमाति कदाग्रह सहित करते हैं, उसका फल दिखाते हैं ॥

कुग्गहगहणाहिआणं, सुतित्थजत्तायचित्तभमणुव्व॥
भमणुव्वभावणाओ, दंसणभट्ठेण जाणेण ॥९१॥

भावार्थ—जो पुरुष सम्यक्त्व भ्रष्ट होय वो पुरुष जितनी क्रिया करते हैं, वो सर्व भव भ्रमणके निमित्त रूप जानना ॥९१॥

अब सुसंग और कुसंगके गुण और दोष दो गाथा करके दिखाते हैं ।

चंदणपवकपणु, ह्लियपरिमलरसिआवेरविचंदणया॥
चंपककुसुमसुगंधि, यातिल्लाओहोइचंपिल्लो ॥९२॥

भावार्थ—जैसे नींबादिक वृक्ष चंदनके वृक्षकी संगतसे चंदन हो जाते हैं । अथवा तिलका तेल चंपेके पुष्पकी संगतसें सुगंध युक्त हो जाता है, इसी तरह सत्पुरुषकी संगतसे दुर्गुणी पुरुष भी सद्गुणी हो जाता है ॥ ९२ ॥

साइज्जलंसुइसप्पे, पडियंमुत्ताहलंचहालहलं ॥
सप्पमुहेवरघुसिणं, कंदलिदलमज्जसंपत्तं ॥९३॥

भावार्थ—स्वाती नक्षत्रका जल सर्पके मुखमें पडनेसे जहर हो जाता है, और सीपके मुखमें पडनेसे मोती हो जाता है। तथा जलका बिंदु केशरमें डालनेसे रंगदार होता है, और केले के दरखतमें पडनेसे कपूर होता है। इसी तरह प्राणी अच्छेकी संगतसे अच्छा होता है, और खराबकी संगतसे खराब हो जाता है ॥ ९३ ॥

अब अच्छे पुरुषकी सोबतसे भी नहीं सुधरे उसके वास्ते कहते हैं ॥

चंदणलट्ठभुअंगा, विसंनमिल्लंतितस्साकिंदोसा ॥
इत्थुगे किंचंदे, खारतेनेव मिलहेइ ॥ ९४ ॥

भावार्थ—चंदनके लिपटे रहनेसे भी सर्प जहरको नहीं छोडे; और उसस सांठेका अग्रभाग कडुवा होय तो इसमें चंदनका और सांठेका क्या दोष है ? इसी तरह सत्पुरुकी सोवत पायकर भी दुष्ट स्वभाववाला नहीं सुधरे तो सत्पुरूषका क्या दोष है?

फिर भी सत्पुरुषकी संगतसें दुर्गुणी अपने स्वभाव को न छोडे उसके वास्ते कहते हैं ।

मियमदगंधेलसणं, नचाइयइविअप्पणोगंधं ॥
रविकरपसरंतेहिं, अंधत्तंहोइउल्लुआणं ॥ ९५ ॥

भावार्थ—कस्तुरीकी संगतसें लसन दुर्गंध नहीं छोडे और सूर्यकी किरणोसे उल्लु अंधा होय तो इसमें कस्तुरी व सूर्यका क्या दोष है ? इसी तरह सत्पुरुषकी संगतसे दुष्ट पुरुष अपना स्वभाव नहीं छोडे तो इसमें सत् पुरुपका क्या दोष है ? ॥९५॥

अव एक उदरमें पैदा हुएभी एक सरीखे नहीं होते सो दिखाते हैं ?

एगूअरससुपन्ना, सहजाया असहवट्टि असरीरा ॥
नाविहुंति य समसीलाकक्कंढ्ढकंट समतुल्ला ॥९६॥

भावार्थ—बोर के कांटे एक जगह उत्पन्न होते हैं, साथही वधते हैं, परन्तु एक तो सीधा होता हैं; और एक टेढा होता है।

इसी तरह सज्जन दुर्ज्जन दोनों पुरुष एक माताके पेटसे उत्पन्न होते हैं, साथही बढते हैं, परन्तु अपना अपना सज्जनपना व दुर्जनपना नहीं छोडते. ॥ ९६ ॥

अब सुसाधु और कुसाधुको संगतका फल दिखाते हैं.

एवंपरोवयारो, साहुअसाहुण संगमारूढो ॥
सेवा संगाइ फलंकुपत पताणुसारेण ॥ ९७ ॥

भावार्थ—शुद्ध साधुकी संगतसे पर उपकारवंत होय और कुसाधुकी संगतसे परका अपकार करने वाला होय से जैसें कुपात्रको दान देनेसे खोटे फल मिले, और सुपात्रको देनेसे अच्छे फलकी प्राप्ति होय. ॥ ९७ ॥

अब जो सज्जन पुरुष होते हैंसो दुर्जन पुरुषोंके साथभी दुर्जनता नहीं कर ते सो दृष्टान्त सहित दिखाते हैं.

किंकार मणिनिउत्तो वेरूलियो किंहवेइकारयमणा।
कसवट्टएहिं घसियं, किंकणयं होई मसिवरन्नं।९८।

भावार्थ—काचके साथ वैडूर्य रत्न मिला हुवाभी काच नहीं होता, और सून्ना कसोटीपर घिसनेसे श्याम नहीं होता। तैसेही सज्जन पुरुषभी दुर्जनके संगतसे दुर्जन नहीं होते हैं.॥९८॥

अब सम्यक्त्व रत्नका दुर्लभपना दिखाते हैं.

लब्भइ विमाणवासो,लब्भइलीलायवत्तिया लच्छी।
इहआहरियं न लब्भइ दुल्लहरयणु व्वसम्मत्तं॥९९॥

भावार्थ—देवलोक मिलना, राजलक्ष्मी मिलना सर्व सुगम है। परन्तु समकित गया हुवा पीछा मिलना बहुत दुर्लभ है॥९९॥

अब आज्ञारहित धर्मका निरर्थकपना दिखाते है.

संजम रहियं लिंगं, दंसणभट्ठा नसंजमं भणियं।
आणाहीणं धम्मं, निरत्थयं होइसव्वंपि ॥१००॥

भावार्थ—संजम रहित लिंग, समकित रहित संजम, आज्ञारहित धर्म, यह तीनों निरर्थक जानना। तात्पर्य यह है कि लिंग संजम धर्मये सब सम्यक्त्व विना निरर्थक जानना॥१००॥

अब जो प्राणी जिन वचन नहीं पाता है उसका हवाल कहते हैं॥

जिणवयणं अलहंता जीवा पातंतिक्ख दुक्खाइं।
लहिउणं संपमत्ता, ताणंचिय घोरसंसारो ॥१०१॥

भावार्थ—जो पुरुष जिन वचनको नहीं पावे वो महा घोर दुःखको प्राप्त होय परन्तु जो पुरुष पायकर फिर प्रमाद करे वो घोर संसारमें भ्रमण करे॥ १०१॥

अब संसारमें जीव किस वास्ते भटकता है सो दिखाते हैं॥

गयपारे संसारे आणा निहिणा अणंत सोकालं।
नलहंति बोहिलाभं, लहिउणं केविहारंति ॥१०२॥

भावार्थ—इस अपार संसार समुद्रमें अनंताकाल भ्रमण

करते हुएभी जीवको सम्यक्त्व पाना महा दुर्लभ है। ऐसा सम्यक्त्व रत्न जो प्राणीहार जाय उसको क्या कहना? ॥१०२॥

अब कई एक जीव कृपणपनेसे सम्यक्त्वको हार जाते हैं, सो दिखाते हैं॥

किव्वतणेण कोई, दोसे पयडेइ साहुसंघाणं ॥
जंपइ अवन्नवायं, संघंन करेसु साहुणं ॥ १०३ ॥

भावार्थ—जिस पुरुषमें कृपणनेका दोष होय, वो प्राणी अच्छे महात्माके संगोंका अवर्णवाद बोले; और सुसाधुओंका संगभी नहीं करता। क्योंकि यह विचारेकि इनकी सोबतसे मेरेको कुछ खर्च करना पड़ेगा, अथवा कुछ देना पड़ेगा। इस वास्ते ऐसोंकी सोवत नहीं करना चाहिये। ऐसा विचार करके माहात्मा ओंका सत्संग न करे॥ १०३ ॥

अब जो दुष्ट पुरुष अच्छे साधुओंकी निन्दा करे उसका फल दिखाते हैं॥

दुठ्ठा सुसाहु निंदाइहपरलोएवी दुठ्ठदारिद्दा।
पइजम्मं विद्धकारिसु, पच्चक्खावयिण दठ्ठवा॥१०४॥

भावार्थ—जो दुष्ट पुरुष अच्छे साधुओंकी निंदा कराकि, ये बारा कुलकी गोचरी करते हैं और मलीन वस्त्र रखते है, परम्पराकी बात मानते नहीं हैं, सिद्धान्त परम्परा को ही ग्रहण करते हैं, इत्यादि अनेक प्रकारकी निंदामेंही जिसकी प्रवृत्ति है

चो प्राणी इस लोक और पर लोकमें दरिद्री होय और जन्म जन्ममें दान लाभ भोग उपभोगके विघ्नको प्राप्त होता है। उस पुरुषको अच्छा संयोग तो मिलेही नहीं ॥ १०४ ॥

अब इतने प्रकारसे बोधिबीज पाया हुवा भी हार जाता है सो दिखाते हैं ॥

दु[illegible]तणेणापिसुण, तणेण दुवियट्ट कोह बहुलेण।
हारंति बोहिलाभं कीडपयगायं जायंति ॥१०५॥

भावार्थ—आज्ञा मुजब वर्तने वाले साधुओं पर दुष्ट भाव रक्खे, ऐसे माहात्माओंकी निन्दा करे और ऐसोंके उपर क्रोध करे वो प्राणी कीडे पतंगीयादिकी योनिको प्राप्त होय ॥१०५॥

अब जो पुरुष साधुकी परपूठ (पिछेसे) निंदा करते हैं उसका फल दिखाते हैं.

पिठिमंसेरसिआ, जलसप्पिणीपमुहारुहिरसोसाय ॥
चालयमिज्झाकिमिआ,जायंतिअदुभिगंधिला॥१०६

भावार्थ—जो प्राणी साधु मुनिराजकी पीठ पीछे निंदा करते हैं, सो जलसर्प जोरववाले भिष्टाके कृमी प्रमुख पेस्तरक हा उन योनियोंमें अवतार लेते हैं ॥ १०६ ॥

अव सुसाधु अथवा कुसाधु कोइकीभी निंदा नहीं करनी; और जो करे तो ऐसे दुःख पाते हैं सो दिखाते हैं.

टूंटामुगाअंधा, दारिद्दाघोरेदुःखबाहुला ॥
सूलाभिन्नसरीरा, साहुअसाहुणानिंदाए ॥१०७॥

भावार्थ—होते हुवे अथवा अन होते हुए दोषोंका नाम लेकर रागद्वेष करे उसको निंदा कहते हैं; और रागद्वेष बुद्धिसे निंदा करे तो वो पुरुष टुंटा, गूंगा, अंधा, सुलभिन्न शरीर इत्यादिक पूर्वोक्त वस्तुकों प्राप्त होता है. ॥ १०७ ॥

अब जो पुरुष परायेकों ठगे, अथवा पर पुरुषके अपवाद करे, उसके वास्ते कहते हैं.

परवंचणेणरत्ता, परापवाएणअप्पसंसणय ॥
ताणंकत्तोबोहि, परमप्पाणयाचबोलेइ ॥ १०८ ॥

भावार्थ—भोले प्राणीयोंको जूठा धर्म बतला कर ठगे; और धर्मवंत पुरुषके अवर्णवाद करे, अपनी प्रशंसा करे उन प्राणीयोंके पिंडमें समकित तो कहांसे होय परन्तु अपने और दूसरेके आत्माको संसारमें डबोने वाले होय. ॥ १०८ ॥

अब कोईके अवर्णवाद नहीं बोलना परन्तु पांचके अवर्णवाद तो अवश्य वर्जना चाहिये सो दिखाते हैं.

ठाणअंगेभणियं, पंचएहमव्वणवायबहुलेण ॥
दुलहबोहियभावं, लहंतिजीवायणिच्चंपि ॥१०९॥

भावार्थ—केवली प्ररूपति धर्म और सूत्र सिद्धान्त चतु-

विध संघ और ब्रह्मचर्य पालके हुवे जो देव, इन पांचका अव-र्णवाद बोलनेसे जीव दुर्लभबोधी होता हैं. ॥ १०९ ॥

अव इन पांचोंका सवर्णवाद बोले तो जीव सुलभबोधी होता है सोही दिखाते हैं.

एसिसुवन्नवाए जीवापावंतिसुलहंबोहित्तं ॥
जहमग्गहाहिवकए, ओइएहिंलद्धंखूसम्मत्तं॥११०॥

भावार्थ—पूर्वोक्त पांचोंके सवर्णवाद बोलता हुवा जीव सु-लभ बोधी होता है। जैसे श्रेणिक कृष्ण प्रमुख महावीर तथा ने-मिनाथ स्वामीकी वंदन पूजन स्तुती करके क्षायिक सम्यक्त्व पायकर तीर्थंकर गोत्र बांधा ॥ ११० ॥

अव धर्म ओर पापका प्रभाव द्रष्टान्त करके दिखाते हैं ॥

धम्माजयंतुवंतो,ललिअंगकुसुमरुव्वंलहइबोहिफलं॥
बहुवितरवालिओ,विहुभीमकुमारुव्वजायंति॥१११॥

भावार्थ—धर्मके अवर्णवाद नहीं बोलनेसे ललितांग कुमा-रकी तरह बोधिवीजको प्राप्त होय, और धर्मका अवर्णवाद बोलनेसे भीम कुमारकी तरह संसार वढता है ॥ १११ ॥

अव सत्व समता ऊपर द्रष्टान्त दिखाते हैं ॥

धम्मिलदामनणइया, सच्चेणअगडदत्तनरवाईणो ॥
समयाएववदंतो, मुणिवइमेयारिउजाण ॥ ११२ ॥

भावार्थः—धाम्मिल्ल और दमदंतक सत्य धर्मसे सुखको प्राप्त हुये, फिर सत्य धर्म-करके अगडदत्त राजा सुखको प्राप्त हुवा, समता करके दमदंत, राजरूपी मुनिपती, मेतार्यरूषी आदि सुखको प्राप्त होते भये। ऐसे ही सत्य समता धारण करता हुवा भव्य प्राणी अक्षय सुखको प्राप्त होता है ॥ ११२ ॥

अब कोई सुलभ बोधी भव्य प्राणी कुलिंगमे रहा हुवाभी स्वभावसे तथा धर्माचार्यके प्रतिबोधसे यथावत् धर्मको प्राप्त होता है, सो दिखाते हैं ॥

धन्नोवल्कलचीरी, कुलिंगमझेविलहइसमत्तं ॥
धन्नोसुबुद्धिमंति, धम्मायरियाओपडिबुद्धो ॥११३॥

भावार्थः—धन्य है, वल्कलचीरीकोंकि जिन्होंने कुलिंगमें रहते हुवेभी सम्यक्त्वको पाया। धन्य है, सुबुद्धि मंत्रीको सो धर्माचार्यके प्रतिबोधसे सम्यक्त्व पाया। तात्पर्य यह हैकि, कुमार्गमें पडे हुवेभी सुधर्म देखकर तथा आचार्यादिकके उपदेशसे बोधको प्राप्त होय, ऐसे सत्पुरुषभी धन्कृत पुण्य जानना ॥ ११३ ॥

अब ग्रन्थ समाप्तिरूप मंगल करनेके वास्ते जिनप्रतिमाका बहु मानरूप मंगल करते हैं ॥

विहिअविहिंचनयाणं, बिंबदिठुंजिणंददेवाणं ॥
सिद्धाणंसंथवणं, कायव्वंनिउणबुद्धिए ॥ ११४ ॥

भावार्थः—विधि और आविधि को नहीं जानते हुएभी जिन बिंब देखकर जिनेश्वर देवकी व सिद्ध परमात्माकी तरह सम्यक दृष्टीको पंच परमेष्टीरूप स्तवन समरण करना चाहिये. ॥ ११४ ।

अब ग्रन्थकी समाप्ति करते हैं ॥

आगमअठुत्तरिआ, रइयाअभयदेवसूरिहिं ॥
पढिआहरेइपाव, सुणिआअप्पेइबोहिफलं ॥११५॥

भावार्थः—यह आगम अष्टोत्तरी ग्रन्थ नवांग वृत्तिकार अभयदेव सूरिकी रची हुई है। जो भव्य प्राणी पढेंगे उनका पाप रूप कर्म हरण करनेवाली है; और सुननेसे बोधिबीजकी प्राप्ति होय ॥ ११५ ॥

इति श्रीमद् अभयदेव सूरि विरचिते आगम अष्टोत्तरी प्रकरण समाप्तं ॥ शुभंभूयात् ॥

॥ जैनं जयति शासनम् ॥

इस पुस्तकके प्रथम ग्राहक बने हैं,

उनोंके मुबारक नाम।

२०१ शेठ चंदनमलजी नागोरी.
छोटी सादडी (मेवाड)

१०१ शेठ लक्ष्मीचंदजी घीया.
प्रतापगढ (मालवा)

५१ बाबु सीरेमलजी बाफना बी. ए. बी. इ. एस. सी. एल. एल. बी. सेकन्ड प्राइवेट सेक्रेटरी टु एच. एच. धी महाराजा होल्कर.
इन्दौर.

५१ शेठ जमनालालजी कोठारी.
बम्बई.

५१ शेठ जवाहरलालजी जैनी.
सीकंद्राबाद. (यु. पी.)

५ शेठ रतनलालजी सुराना.
रतलाम.

१ मी. उमरावसिंहजी टांक बी. ए. एल. एल. बी.
देहली.

५ कोठारी शेरासिंहजी.
रतलाम.

१ शेठ राजमलजी तेजराजजी.
दारव्हा (वराड)

१ उदयचंद लालचंद शाह.
बम्बई.

यतो धर्मस्ततो जयः

श्री भोज ट्रेडिंग कम्पनी

महाशयो ! बंबई शहर में " श्री भोज ट्रेडिंग कंपनी " स्थापित की गई है । इस कंपनी द्वारा सर्व प्रकारकी वस्तुएं जैसे कागज, कलम, श्याही, पुस्तकें, घडियें, दवाइयें, कपडे और मनोरंजन करनेकी चीजे बाजा आदि बडे लाभ के साथ मँगानेवाले सज्जनों के पास भेजी जाती हैं । हम अपने मुँह से क्या कहे, जब आप एक वक्त इस कम्पनी के द्वारा माल मँगावेगे तो खुद आपही को अपने मुँहसे प्रशंसा करना पडेगी और जब कभी आप को किसी चीज की आवश्यकता होगी आप इसी कम्पनी को आर्डर देंगे । एक वक्त माल मँगाइये, अनुभव कीजिये और बाद में यदि हमारी ओर से आप को किसी प्रकारका धोखा हो तो हमें लिखिये; हम आप को दुगने दाम वापिस देंगे । योंतो आपने अनेक कम्पनियों से माल मँगाया होगा और अनेक कम्पनियोंने आपको माल अच्छा और टिकाउ भी भेजा होगा; किन्तु अब इस कम्पनी से भी मँगवाकर देखें । हमारा लिखना कहाँ तक सत्य है, इस बातका अनुभव करें । विशेष क्या लिखें ? ज्यादः लिखने से शायद हम भी कहीं झूठों की गिनती में शुमार किये जावें क्यों कि आजकल लम्बे चोडे विज्ञापनों से लोगों का चित्त हटा हुआ है । इस लिये इतना ही बस । आपसे केवल अब आर्डर पानेकी आशा रखते हैं ।

हमारा पता.

" श्री भोज ट्रेडिंग कम्पनी. "

बम्बई नं. ४